भारत में नारी असमानता का विश्लेषण प्राचीन काल से स्वतंत्रा प्राप्ति तक

डॉ. नरेन्द्र प्रताप गुप्ता*

हजरों वर्षो से निरन्तर गतिमान मानव सभ्यता को पुष्पित पल्लवित करने में महिलओ का महत्वपूर्ण योगदान रहा है किन्तु इतिहास में इस गयोगदान को अधिकांषतः अनेदखो ही किया गया है। महिलाओं की शक्ति व योग्यता को नकारने की प्रवृत्ति हर युग में किसी न किसी रूप में देखने को मिलती है। भारत में महिलाएं सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न दौर से गुजरी है। जाति व्यवस्था लिंगभेद ने उन्हे समाज के साथ सार्थक संवाद स्थापित रकने व अपने आपको अभिव्यक्त करने क सम्मुचित अवसर प्रदान नहीं किए। भारतीय समाज में हिलाआके की स्थिति के बारे में सामान्य धारणा यह देखने को मिलती है कि प्राचीन काल में महिलआके की स्थिति अच्छी थी। मध्यकाल में उसमें अत्यधिक गिरावट आ गयी तथा वर्तमान में इसमें सुधार हो रहा है। सर्वप्रथम हम प्राचीन काल की बात करें तो सर्वमान्य धारणा है कि प्राचीन वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति बहुत अच्छी थी, उन्हें आर्थिक सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में उच्च स्थान प्राप्त था। वे आतमिक उत्थान तथा बौद्विक प्रभाव प्राप्त कने केा स्वतंत्र थी। वैदिक काल में अनेक विदुषियों हुई थी जिन्होने वेदों की ऋचाओं की रचना की थी व पुरूषों से शास्त्रार्थ करती थी।

किन्तु उन्हीं प्राचीन ग्रंथों में अनेक तथ्य इसके विपरीत यथार्थ की ओर ले जाते ळै। ऋग्वेद में एक हजार से ज्यादा सूक्त हैं। इनमें से महिला मनीषियों द्वारा दिए गये। पूर्णतः या आंषिक रूप से संबंधित श्लोंकों की संख्या महज 12–15 से ज्यादा नहीं है। इस तरह महिला मनीषियों का प्रतिनिधित्व स्पष्टतः बहुत मामूली है। इतनी ही महत्वपूर्ण बात यह है कि एक तरफ गार्गी जैसी महिला दाशनिकों की चर्चा मिलती है वहीं शिक्षा प्रसार के औपचारिक संस्थाओं में बतौर छात्रा या शिक्षिका के रू‍ में महिलाआके की उपस्थिति के प्रमाण बहुत कम हैं। दूसरे शब्दों मे ऐसी महिलाएं संभवतः नियमित बौद्विक गतिविधियों में हिस्सेदारी करने के बजाए सिर्फ गाहे–बगाहे की अपनी उपस्थिति दर्ज कराती थी। वैदिक ऋचाओं में

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, के.प्र.मि. राजकीयय महिला महाविद्यालय, औराई, भदोही

300 ऋषि है पर इनमें गिनी हुई महिलाएं हैं जुहू राची घोषो लोमशा लोपामुद्रा और विश्वाबारा।

अथर्ववेद में तो स्त्री के प्रति वैदिक समाज के संकीर्ण सोच के कई उदाहरण मिलते हैं। अध्याय 3 के सूक्त 25 मंत्र 5 और 6 में एक व्यक्ति कुशा से पीटता हुआ कहता है हे स्त्री मै तुम्हें माता–पिता के घरा लाता हूँ ताकि तू मेरी आज्ञा माने। हे मित्रा वरूण! इस स्त्री के हृदय को ज्ञान शुन्य कर दो ताकि उसे कर्माकर्म का ज्ञान न रहे ।अैर यह मेरे अधीन रहे। अध्याय 6 के सूक्त 77 में स्त्री को घो़ड़े के समान बांाकर रखने की इच्छा जतायी गयी है तथा उसे भाग जाने वाले स्वभाव का बताया गया है।3

उपरोक्त तथ्य बैदिक कालीन स्त्रियों की अच्छी स्थिति के घोतक नहीं है।

आगे चलकर मनु ने स्त्रियों को उपनयन संस्कार में शामिल होने से रोक दिया जो कि पवित्र ज्ञान प्राप्ति का प्रारम्भ बिन्दु था। इसके बदले में उन्होनं जा`विकल्प सुझाये वह स्त्रियों को सार्वजनिक भूमिका से दूर करता था। उनके अनुसार स्त्रियों के लिए विवाह करना पुरूशों के उपनयन के समकक्ष था पति की सेवा करना छात्र होने के समान था और घर के कामों को सम्पन्न करना पवित्र अग्नि की पूजा अर्चना के समान बताया यगा (मनुस्मृति 11–67) ऐसे निर्देषों को स्वीकार कर लेने का मतलब होता कि कोई भी गैर घरेलू काम को नारीतवहीन और गैर पत्नी कार्य माना जाता। मनुस्मृति के ही पांचवें अध्याय के श्लोक 147 में कहा गया है कि घर में भी स्त्री अपनी इच्छा ासे कोई काम न करे। इसी प्रकार इसी अध्याय के श्लोक 152 में कहा गया है कि स्त्री चूकिं विवाह में कन्यादान के रू मे ंदी जाती है। इसलिए पति के स्वामित्व में रहीत है। इसके बाद के श्लोक 154 में स्त्री की दासता को बेहद घृणित स्वरू दिया गया है इसमें कहाा गया है कि पति लुच्चा कामी अशिक्षित गुणहीन भ्झी हो तो पत्नी को चाहिए उसकी देवता की तरह उपासना करे।

इस प्रकार मनुस्मृति भी ऐसेस आधार प्रस्तुत करती है जो स्त्रियों की असमानता को स्थापित में सहयोग करता है।

समय के साथ स्त्री कीा प्रतिष्ठा और अवसर गिरते गए। उस पर लगने वाले नियंत्रण बढ़ते गए। ऐतरेय ब्रहम्ण में उसे 'अनर्थ का मूल' कहा गया।

शतपथ ब्राहम्ण में कहा गया है कि स्त्री शुद्र कुत्ता और कौवे में झूठ पाप और अंधकार रहता है ।स्कन्द पुराण में शीलवती पतिव्रता स्त्री के बारे में लिखा है कि पीटी जाने वाली स्त्री को जोर से रोना–चिखना नही

चाहिए तथा स्त्री को पीटने के लिए पतली छड़ी और रस्सी सुझायी गयी है। रामायण में स्त्री को हठी, अविवेकपूर्ण, ईर्ष्यालु कटु आदि नकारात्मक गुणो से लैस कहा गया । ऐसी ही वर्ण महाभारत में भी मिलता है। भीष्म ने कहा हे छूरे की धार विष सांप और आग एक ओर और स्त्रियां दूसरी ओर। उन्होंने स्त्रियों के लिए किन्ही भी धार्मिक कर्म–क्रियाओं के विधान से मना किया है। गीता में जन्म से ही स्त्रियों वेश्यों और शुद्रो की योनियों को पापा योनियों की संज्ञा दी गयी है। मैत्रायणी संहिता में भी स्त्रियों को झूठ से उत्पन्न होने वाला कहा गया है ।जैन और बौध धर्म ने स्त्री को भिक्षुी बन कर स्वायत्त जीवन जीने की स्वतंत्रता तो दी परंतु इससे सित्रयो के बारे में न तो प्रचलित धारणा ही बदली न ही इंसानी दर्जा मिला। गौतम बुद्व भी स्त्री को सारे पापों की जड़ मानते थे। कौटिल्य ने भ नारी को अविश्वसनीय , चंचल अस्थिर, बुद्वि दल–छद्म से पूर्ण माना। इसी कारण नारी को नियंत्रण में रखा जाने लगा। कौटिल्य ने तो पत्नी को पिता के परिवार व सम्बन्धियों से संपर्क रखने से भी वंचित कर दिया। यहां तक कि पुत्र विहीन विधवा को अपने पति की सम्पत्ति से भी वंचित कर दिया।7

निश्चय ही ये समस्त व्यवस्थाएं स्त्री के हित में नहीं थी। धर्मशास्त्रकारों द्वारा निर्धारित सभी नियम उनके विरूद्व थे निरंकुश थे तथा भेदभाव से प्रेरित थे जिसमें स्त्री की आकांक्षाओं और कामनाओं का कोई स्थान नहीं था।

आठवी से अट्ठारहवीं सदी के बीच अर्थात मुहम्मद बिन कासिम से लेकर मुगल साम्राज्य के पतन तक भारतीय नारी पर अधिक बन्धन लगाये गये। विधवा को अशुभ व अमंगलकारी मानकर उसे किसी भी शुभ कार्य में भाग लेने से रोका जाने लगा। सतीप्रथा जौहर व पर्दा प्रथा नारी की नियती बन गयी। इस काल में हिन्दु धर्म की रक्षा रक्त की शुद्वता और सित्रयों के स्त्रीत्व को बनाएं रखने के लिए महिलाओं के संबंध में नियमों को और भी अधिक कठोर बना दिया गया था। महिला शिक्षा पूरी तरह से समाप्त हो गयी थी।

उन्नींसवी सदी के उत्तरार्ध में अंग्रेजी सरकार ने न्यायालयों द्वारा प्रशासित नये कानूनी व्यवस्था के दायरे में भारतीय स्त्रियों को बांध दिया। यद्यपि अंग्रेज सरकार ने स्त्रियों के हित में सती उन्मूलन विधवा पुनर्विवाह बालिका हत्या पर पाबंदी हेतु कानून पारित किये। लेकिन हिन्दुआके उत्तराधिकार तथा विवाह संबंधी कानूनों को हुआ तक नहीं। अंग्रेज सरकार न्यायालय और समाज सुधारको के रवैयों की विवेचना करते हुए विधवा स्यिों के मानवीय हितो और अधिकारों के संबंध में उमा चक्रवर्ती9 लिखती है।

''साम्राज्यवादी राज्याके ने स्वयं या मध्यवर्गीय समाज सुधारक बुद्विजीवियाके क ेसाथ मिलकर स्त्रियों से संबंधित कानून ो बनाए परंतु वे विधवा पुनर्विवाह परिवारिक ढांचा पति–पत्नी के संबंधों के तानों–बानों को पूरी तरह परिवर्तित करना नही ंचाहते थे। इसलिए औपनिवेशिक राज्य का नजरिया इन सवालो ंपर समय और स्थान के अनुसार बदलता रहा।

राष्टीय आंदोलन के दौरान महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। मुख्य रू ेसे प्रथम विश्वयुद्व के समय से ही महिलाओं ने राष्टीय आंदोलन में सकिय भागीदारी शुरू की, गांधी जी आंदोलन में महिलाओ की भागीदारी के पूर्ण पक्षधर थे। यंग इण्डिया 10 15 दिस. 1929 में उनहोनं कहा था जब भारत की महिलाएं जाग्रत हो गयी है तो स्वतत्रता को कोई रोक नहीं सकता। स्वाज पाने में औरतों का हिस्सा पुरूषों के बराबर ही है बल्कि इस शांतिपूर्ण संघर्ष में स्त्रियां कई मील आगे हैं।

किन्तु लता सिंह 11 ने अपने अध्ययन राष्टीय आंदोलन में महिलाएः भूमिका के सवाल में इससे भिन्न मत दिया है। उनका कहना है कि राष्टीय आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी उनकी घेरेलू भमिका का विस्तार मात्र ही दिखती है। इस भागीदारी में उनहें राजनीतिक क्षेत्र में पुरूषों के समान कोई चुनाव या स्वतंत्र कार्य करने की गुंजाइश नहीं थी। आंदोलन में उनकी भागीदारी से न तो उनके घरेलू जीवन या पारिवारिक समीकरणों में कोई अंतर आया न उनके जीवन शैली में कोई परिवर्तन ाअया और न ही उनकी राजनीतिक भूमिका में कोई बदलाव आया। उन्हें कभी भी राजनीतिक एक्टीविस्ट की तरह नहीं देखा गया। महिलाओं को प्रतिरोध आंदोलन में शामिल करने के लिए जो ढांचा और रणनीति बनाई गई उससे न तो उनका राजनीतिकरण संभव था, न ही निरंतर भागीदार और न ही उनके हितों की रक्षा।

भारतीय नारी की स्थिति की यह विवेचना दलित और आदिवासी सी की पृथक विवेचना के बगैर अधूरी है। चूंकि जाति व्यवस्था असमानता, शोषण दमन पर आधारित रिश्तों को मान्यता देती है इसलिए दलित स्त्री अपनी जाति, वर्ण और लिंग की वजह से सर्वाधिक दलित और शोषित रही है। उन्हें दोरे शोषण का शिकार होना पड़ता है। उनकी त्रासदी यह है कि उन्हें एक गाल पर ब्राहम्णवाद का तो दूसरे गाल पर पितृसत्ता का थप्पड़ खाना पड़ता है।12 विजया भारती ने अपने लेख 'हिन्दू एपिक्सः पोर्टेयल ऑफ दलित वीमेन में कहा है कि सवर्ण और अवर्ण स्त्री के दमन की प्रकृति भिन्न है। दलित होने की वजह से सवर्ण स्त्री भी उसके लिए वैमनस्य रखती है। सवर्ण स्त्री शिक्षा तथा अन्य सामाजिक क्षेत्रों में दलित स्त्री से

आगे रही है।13 दलित महिलाएं औरत के रूप में पुरूष वर्चस्व तथा निचली जाति का होने के कारण जातिवाद की प्रताड़ना सहते हुए हमेशा से न तो सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत कर पायी और न ही अपने व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास कर पायी।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय समाज में महिलाए सदैव से हाशिए पर रहीं। समाज की आधी जनसंख्या होने के बावजूद उनकी सार्वजनिक, राजनीतिक, निर्णयकारी और नेतृत्व की भूमिका सदैव गौण रही है। यद्यपि स्वंत्रता प्राप्ति के प्श्चात संविधान और राजनीतिक व्यवस्था द्वारा महिलाओं के विकाास हेतु निरंतर प्रावधान किए गयेह ैं जिसके परिणाम स्वरूप सार्वजनिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओ की भागीदारी में गुणात्मक रूप से वृद्वि हुई है।

किन्तु इसके साथ ही साथ इसका दूसरा पक्ष यह भी है कि समाज में आज भी महिला विरोधी नकारात्मक सोच मौजूद है जिसका शिकार शिक्षित और शक्तिशाली पदों पर बैठी महिलाएं भी होती है। समाज के निचले और गरीब हिस्से में यह नकारात्मक सोच आज भी बहुत प्रभावशाली है। यह नकारात्मक सोच उन्हीं मूल्य–मान्यताओं से पैदा होती है जिसकी जड़े प्राचीन धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व्यवस्था में मौजूद है जिनमें महिलाओं की स्थिति को अच्छा बताया जाता है। महिला विरोधी मूल्य–मान्याताओं को आज भी प्रभावशाली होने का प्रमुख कारण है कि इन मूल्य मान्यताओं को आज तक सशक्त एवं संगठित चुनौती नहीं दी गयी है। सबसे घातक बात यह है कि यह ऐसी मनः स्थिति तैयार करती है। जिससे महिलाएं स्वयं अपने शोषा की परिस्थितियों व अपने वर्ग विरोधी प्रवृत्तियों को बहुधा संघर्ष स्वीकार कर लेती है। महिलाओं की असमानता को दूर करने एवं उनके विकास के सभी उपायों के साथ महिला विरोधी सोच व संस्कृति को पहचानना व चुनौती देना सर्वाधिक जरूरी है। इसके अलावा महिलाओं की समानता को सुनिश्चित करने के लिए कुछ अन्य पहलुओं जैसे–महिलाओं में आत्मसम्मान व आत्मविश्वास की भावना विकसित करना, उनकी सकारात्मक छवि का निर्माण, विकास प्रक्रिया में समान भागीदारी, सार्वजनिक वनिजी स्तर पर निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी तथा सामाजिक आर्थिक जीवन के सभी क्षेत्रों में समान रूप से उनकी सहभागिता में वृद्वि हेतु प्रयास आदि को आधार बनाया जा सकता है।

संदर्भ सूची

1 गोयल, सुनील, एवं गोयल, संगीता, भारतीय समाज में नारी, आर.बी.एस. पब्लिशर्स जयपुर प्रथम संस्करण 2003, पु. सं.1–2

2 आर्य, साधना, मेनन, निवेदिता, लोकनीता जिनी द्वारा संपादित नारीवादी राजनीति संघर्ष एवं मुद्दे हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण 2001, पृ. सं 14

3 दृमुद्राराक्षस, धर्मग्रंथों का पुनपठि, इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम संस्करण पृ.सं. 47

4 नरीवादी राजनीति संघर्ष एवं मुद्दे, उपरोक्त पृ. सं. 14

5 धर्मग्रन्थों का पुनर्पाठ, उपरोक्त पृ.सं. 108–109।

6 जोशी गोपा भारत में स्त्री असमानता एक विमर्श, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006 पृ.सं. 28

7 गोयल और गोयल, भारतीय समाज में नारी, उपरोक्त पृ.सं. 3

8 वही, पृ.सं. 3

9 चक्रवर्ती, उमा, री राइटिंग हिस्ट्री द लाइफ एण्ड टाइम ऑफ पण्डित रमा बाई, उद्वृत जोशी, गोपा, उपरोक्त पृ.सं. 46

10 यंग इण्डिया 15 दि. 1929 उद्वृत शर्मा, संगीता, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और स्त्रियां आधी दुनिया, नीता मल्ल द्वारा संपादित, बी.एम.एस. प्रकाशन लखनऊ 2001, पृ. सं. 8

11 नरीवादी राजनीति संघर्ष एवं मुद्दे उपरोक्त पृ.सं. 170–175।

12 नैमिशराय, मोहनदास 'दोनों गालों पर थप्पड़' अभय कुमार दुबे द्वाा संपादित 'आधुनिकता के आइने में दलित, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002 पृ.सं. 230

13 भारत में स्त्री असमानता, उपरोक्त, पृ.सं. 135.

****